RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-08
August-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

भारतीय संसद का बदलता स्वरुप: एक आलोचनात्मक अध्ययन

पंकज लखेरा

सहायक प्राध्यापक, राजनीतिक विज्ञान विभाग, स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ARTICLE DETAILS

Article History

Published Online: 07 August 2018

Keywords

विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, प्राक्कलन समिति, लोक-लेखा समिति, द्विसदन, अप्रत्यक्ष लोकतंत्र

ABSTRACT

भारतीय संसद भारत के व्यापक राजनीतिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। संविधान निर्माताओं ने लोगों के प्रतिनिधित्व के तौर पर संसद का निर्माण किया। भारतीय संसद को अन्य संस्थाओं से भी चुनौती मिली है। इन चुनौतियों ने ना सिर्फ संसदीय संस्थाओं को सुदृढ़ बनाया है बल्कि उन्हें प्रभावित भी किया है। आज़ादी के बाद से ही संसद के कार्यकलाप में निरंतरता के साथ ही साथ बदलाव भी हुआ है। यह बदलाव भारतीय राजनीतक प्रक्रिया के कई संदर्भों का नतीजा है।संसदीय संस्थाओं ने अपनी सीमाओं मे रहते हुए भारतीय राजनीति मे दावा पुख्ता किया है।

प्रस्तावना

आजादी के बाद संविधान निर्माता ने एक ऐसा देश बनाने का संकल्प लिया जो लोगो के द्वारा शासित हो। चूंकि इतने बड़े देश में प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव नहीं था इसलिए भारत को अप्रत्यक्ष लोकतंत्र बनाने का निर्णय लेना पड़ा । हालाँकि, वो इस बात के लिए सजग थे की हमारा देश एक भागीदारी लोकतंत्र हो और सही मायने में लोकतांत्रिक हो। इसके अंतर्गत हर नागरिक को मतदान का सामान अधिकार दिया। देश के लोगो के प्रतिनिधि के लिए संसंद का निर्माण किया गया।

भारत एक संसदीय लोकतंत्र है। इसके दो सदन हैं । निचले सदन को लोक सभा कहा जाता है। इसमें 545 सदस्य होते हैं। उपरी सदन को राज्यसभा कहा जाता है। इसमें 250 सदस्य होते हैं। निचले सदन के लिए एकल-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा प्रतिनिधियों का चुनाव फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट (एफपीटीपी) के आधार पर किया जाता है। उच्च सदन के लिए राज्य विधानसभाओं से आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा चयन होता है। संसदीय सरकार के संस्थान भारत की राजनीतिक संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्त्व है। ये भारत के अतिरिक्त-संसदीय संघर्ष के प्रकृति को भी प्रभावित करती है । भारतीय संविधान ने अंग्रेजों के संसदवाद को केवल सकारात्मक के संदर्भ में नियंत्रित किया जिसके अंतर्गत विशेष रूप से पहचाने गए सामाजिक समूहों के लिए को आगे बढाने के लिए काम किया जिससे की उनकी भौतिक पिछड़ापन रुकावट ना बनें।

संसद एक व्यापक राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा है। सामाजिक संघर्ष अक्सर संसदीय संस्थाओं को न सिर्फ सुदृढ़ बनाता है बल्कि उन्हें प्रभावित भी करता है। हालाँकि, एक समय में राज्य और उसकी संस्थाओं के सन्दर्भ के बिना चर्चा करना व्यवहारिक माना जाता था जिसे अब नकार दिया गया है। वैसे ये भी औचित्यपूर्ण नहीं होगा की हम व्यापक समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण को नकार दें।

संसदीय प्रतिनिधित्व की गतिशीलता ने नए प्रकार की राजनीतिक पहचान के उद्भव की संरचना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके साथ इन संसदीय संस्थाओं ने संसदीय प्रणाली की वैद्धता को भी बढ़ाया है। 1990 के दशक ने सांसदों की संख्या में यकीनन आज़ादी के बाद से नाटकीय परिवर्तन देखने को मिला जिसमें ‘ अन्य पिछड़े वर्ग’ से आने वाले सांसदों की संख्या बढ़ी।

इसी समय में लिंग आधारित आरक्षण की माँग के लिए संसद में तीखी बहस हुई। इसके अलावा, भ्रष्टाचार के मुद्दे और इस तरह के अंतर-संस्थागत प्रतिस्पर्धा बढ़ने की वजह से इनकी सफलता की कहानी में थोड़े प्रश्न आये हैं। हालाँकि कई चिंतकों का मानना है कि वंचित तबकों से प्रतिनिधित्व बढ़ने से लोगों की स्थिति सुधरी है परन्तु ये पर्याप्त नहीं है।

संसदीय व्यवस्था

लोकसभा एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों से चुने गए प्रतिनिधि से बनी है। भारतीय प्रधानमंत्रियों मुख्य रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य रहे हैं। लेकिन 1990 के दशक से गठबंधन की शुरुआत के बाद प्रधान मंत्री कई राजनीतिक दलों से आए हैं। दैनिक संसदीय सरकार के कामकाज और प्रक्रियाएं अध्यक्ष और उपाध्यक्ष पर निर्भर करता है। भारतीय प्रधान मंत्री कार्यपालिका का प्रमुख होता है, और उसकी स्थिति एक राजनीतिक दल के प्रमुख होने पर टिकी होती है, जिसमें लोकसभा में सबसे अधिक सांसद बैठे होते हैं। लोकसभा सीटों को ऐतिहासिक रूप से 10 साल की जनगणना के आलोक में संशोधित किया गया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र लगभग समान संख्या में लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि, 1976 में एक संवैधानिक संशोधन के बाद, 2001 की जनगणना तक निर्वाचन क्षेत्र की सीमा में संशोधन को निलंबित कर दिया गया था। इसकी वजह से निर्वाचन क्षेत्रों में काफी अन्तर पाया जाता है।

अंततः, हालांकि, सरकारें तब तक अपने पद पर बनी रहती हैं, जब तक कि वे कार्यशील बहुमत (सदन की आधी सदस्यता और एक) का आदेश दे सकें। समय से पहले विघटन के मामले में, राष्ट्रपति निवर्तमान

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

प्रधान मंत्री की सलाह पर, अपने स्वयं के कार्यालय से सलाह पर कार्य करता है, और यदि आवश्यक हो, तो सर्वोच्च न्यायालय, या तो एक ऐसे नेता का पुनर्गठन करने के लिए जो बहुमत प्राप्त कर सकता है या नए चुनावों का आह्वान कर सकता है। राष्ट्रपति का विवेक- जिस हद तक प्रधान मंत्री की सलाह बाध्यकारी है-विवादास्पद रहा है, खासकर जब प्रधान मंत्री की स्थिति असुरक्षित है।

द्विसदनवाद भारतीय संसदीय पद्धति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। राज्यसभा एक छोटा निकाय है, जिसमें अप्रत्यक्ष चुनाव होते हैं और सदस्य छह साल की अवधि में सेवा करते हैं और हर दो साल में चुनाव एक तिहाई हिस्सा के लिए चुनाव होता है। ऐसे में राज्यसभा को भंग नहीं किया जा सकता है।

27 भारतीय राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की विधायिका 223 राज्यसभा सांसदों के लिए मतदान करती है। 12 सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा कई तरह के पेशों में उत्कृष्ट राष्ट्रीय सेवा के आधार पर नामित किया जाता है। प्रधान मंत्री संभावित उम्मीदवारों के नामांकन पर राष्ट्रपति को सलाह देते हैं, लेकिन यह परंपरा लंबे समय से स्थापित है कि इस तरह के नामांकन पार्टी की वफादारी को प्रतिबिंबित नहीं करना चाहिए। राज्य सभा के पास सीधे निर्वाचित निचले सदन से निकलने वाले विधान की जाँच करने और उसे विफल करने की अपनी क्षमता की सीमाएँ हैं। यह किसी धन विधेयक पर मतदान नहीं कर सकता है, न ही उस पर ढील दे सकता है, और वह जितनी बार लोकसभा द्वारा पारित विधेयक को लौटा सकता है, वह सीमित है।

संसदीय समीति

1990 के दशक के बाद से एकल-पक्षीय सरकारों में गिरावट ने समितियों की भूमिका और कार्य को प्रेरित किया है, और सरकारों को व्यापक गठबंधनों के प्रबंधन में उनका उपयोग करने की आवश्यकता को बढ़ा दिया है। जैसे-जैसे सदन में दलों की संख्या बढ़ी है, समिति की संरचना संसदीय सदस्यता का अधिक प्रतिनिधि बन गई है, और इसने प्रस्तावित सरकारी कानून से निपटने के दौरान उनके कार्य को बढ़ाया है। सबसे महत्वपूर्ण समितियाँ सार्वजनिक उपक्रम समिति, प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति और कार्य सलाहकार समिति हैं।

विशेषाधिकार समिति एक महत्वपूर्ण निकाय है, जो संसदीय आचरण के मुद्दों पर निर्णय लेती है। आश्वासन संबंधी समिति इस मायने में महत्वपूर्ण है कि यह प्रश्नकाल के दौरान उठने वाले मामलों और विभिन्न ध्यानाकर्षण प्रस्तावों का अनुसरण करती है, जिनमें अगर मंत्री तुरंत जवाब देने में असमर्थ होते हैं तो बाद में सदन में जवाब लाने का वादा करते हैं।

ब्रिटिश सरकार के तहत कुछ समूहों के कम प्रतिनिधित्व के निवारण के प्रयास शुरू हुए, जिसने 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत अल्पसंख्यकों की एक श्रृंखला के लिए कोटा शुरू किया, और अलग-अलग धार्मिक समुदायों के लिए अलग-अलग मतदाताओं की एक श्रृंखला को उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया।

समिति इन वादों की जांच करती है कि क्या जानकारी एक निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर प्रदान की गई थी। समिति की रिपोर्ट अक्सर विभिन्न कारणों से सरकारी मंत्रियों के विभिन्न आश्वासनों से बाहर किए जाने के अनुरोधों से निपटती है। अध्यक्ष, आमतौर पर सर्वसम्मति के माध्यम से, तदर्थ समितियों को बुलाते हैं, हालांकि कुछ मामलों में मतदान भी हुए हैं।

भारतीय संविधान राष्ट्रपति के अध्यादेशों की घोषणा की शक्ति प्रदान करता है, जिसमें राष्ट्रपति एक निर्दिष्ट समय अवधि के भीतर, प्रधान मंत्री की सलाह के तहत और संसदीय अनुमोदन के अधीन तत्काल प्रभाव में कानून पारित करता है। अध्यादेश तभी जारी किया जा सकता है जब संसद का सत्र न चल रहा हो। राष्ट्रीय आपात स्थिति और पूरे संघीय व्यवस्था में राज्य सरकारों के गिरने जैसे मुद्दों से निपटने के लिए अध्यादेश तैयार किए गए थे। वे इस मामले में विवादास्पद बने हुए हैं कि वे कार्यपालिका को संसद को दरकिनार करने का मार्ग देते हैं।

संसदीय कार्यात्मक समीक्षा

संसद में कांग्रेस का दबदबा था तथा 1964 में अपनी मृत्यु तक नेहरू पार्टी पर हावी रहे। इस समय संसद के भीतर किसी भी तरह की विविधता कांग्रेस की विविधता का ही एक रूप था। स्वतंत्रता के बाद से संसद के विकास पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है, और जैसे-जैसे कांग्रेस का पतन हुआ, इसका संसद के कामकाज पर भी प्रभाव पड़ा। लोकसभा में औपचारिक विपक्ष की उपस्थिति अपेक्षाकृत हाल तक, सीमांत रही है, जिसमें गैर-कांग्रेसी सांसदों की एक बड़ी संख्या निर्दलीय थी, और कई दलों पर व्यक्तित्व और परिवारों का प्रभावी रूप से वर्चस्व था। बहरहाल, विपक्षी दल ध्यानाकर्षण नोटिस, नियम 184 के तहत वाद-विवाद, आधे घंटे की वाद-विवाद और विशेषाधिकार प्रस्तावों के रूप में अध्यक्ष से पर्याप्त संसदीय समय प्राप्त करने में सक्षम रहे हैं। 1971 और 1975 के बीच, और फिर 1980-9 के दौरान, प्रधान मंत्री के खिलाफ रिकॉर्ड संख्या में विशेषाधिकार प्रस्ताव दिए गए। इनके साथ ही औपचारिक अविश्वास प्रस्तावों को अक्सर अनुमति दी गई है और असाधारण परिस्थितियों में बड़ी बहुमत वाली सरकारों पर भी लाभकारी प्रभाव उत्पन्न किया है।

विरोध का एक अन्य रूप जो विशाल बहुमत के संदर्भ में उभरा है, वह ऊपर बताए गए विरोधों से काफी अलग है। यह एक प्रकार की अत्यधिक वैधानिकता का गठन करता है, लगभग संसदीय प्रक्रिया का ही व्यंग्य है। इस तरह के विरोध में प्रस्तावित कानून को उस रूप में प्रस्तुत करने, मसौदा तैयार करने, या यहां तक कि समय सारिणी के कारण प्रस्तावित कानून को प्रश्न में शामिल करना शामिल है। 1970 में, श्रीमती गांधी की तत्कालीन अल्पसंख्यक सरकार ने प्रिंसेस प्रिवी पर्स को समाप्त करने के लिए एक विधेयक पेश किया - वास्तव में भारत के पूर्व शासक रियासत को दी गई पेंशन - एक सरकारी 'धन' विधेयक के रूप में। इसने कानून में इसके पारित होने के लिए आवश्यक बहुमत को कम कर दिया और राज्य सभा को इस पर मतदान करने से रोक दिया। विपक्ष ने तर्क दिया कि उसने वास्तव में एक संवैधानिक संशोधन विधेयक का गठन किया, जो उच्च सदन को इस पर मतदान करने की अनुमति देगा। अध्यक्ष ने सहमति व्यक्त की, और विधेयक को उच्च सदन में पराजित किया गया।

संसद को गुमराह करने और उसमें हेरफेर करने की इच्छा रखने वाली सरकारों के पास अक्सर ऐसा करने के लिए बहुमत होता है। सबसे बुरे मामले आपातकाल की अवधि और 1976 में बयालीसवें संशोधन के पारित होने से आते हैं, जिसने विडंबना यह है कि पूरे संविधान पर संसदीय संशोधन के दायरे का विस्तार लेकिन एक केंद्रीकृत, गैर-प्रतिनिधि पार्टी संरचना के हित में करने की मांग की। राजीव गांधी ने 1984 और 1989 के बीच अपने विशाल संसदीय बहुमत का उपयोग जांच आयोग अधिनियम में

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

संशोधन करने के लिए किया ताकि संसद के समक्ष एक विशेष रूप से विवादास्पद रिपोर्ट को रखने से रोका जा सके।

उनकी संख्यात्मक कमजोरी को देखते हुए, और एक ऐसे प्रधान मंत्री का सामना करना पड़ा, जिन्होंने उन्हें या तो उपद्रव या राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरे के रूप में देखा, विपक्ष शायद ही कभी सरकारी कानून को हरा सके। इस संदर्भ में, विपक्ष ने व्यापक रूप से अतिरिक्त संसदीय विरोध और विघटनकारी व्यवहार की कोशिश की और सरकार को एक बिल को स्वचालित रूप से कानून में परिवर्तित करने से निराश करने की कोशिश की।

निष्कर्ष

अध्यक्ष ध्यानाकर्षण नोटिसों, विशेष उल्लेखों, संसदीय विशेषाधिकारों के प्रस्तावों, आधे घंटे की वाद-विवाद, और मंत्रियों को प्रश्नों की वैधता और रखने पर नियम बनाते हैं, जो प्रत्येक दिन संसदीय कार्य की शुरुआत में होते हैं। अध्यक्ष की भूमिका में दिखाई देने वाले परिवर्तन में उन्हें एक सुलहकर्ता और सरकार के विपक्षी संवाद के सूत्रधार के रूप में कार्य करना शामिल है। गुजरात में स्पीकर सरकार और विपक्ष के बीच एक समझौता करने की कोशिश में केंद्रीय बन गए, जिससे लोकसभा में उनके पारस्परिक लाभ के लिए मुद्दों पर बहस हो सके और संसद के सामान्य कामकाज को आगे बढ़ने दिया जा सके।

इस तरह की वकालत के निहितार्थ एक कानून बनाने वाली संस्था के रूप में संसद की केंद्रीयता और संसद के बजाय सुप्रीम कोर्ट के मसौदा कानून की व्यावहारिकता के लिए कुछ चिंता का विषय थे। यह कोई अकेली घटना नहीं थी। प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अलावा, संसद की प्रभावशीलता अंततः 1950 में निर्धारित भारतीय संविधान के सिद्धांतों को संतुष्ट करने के उद्देश्य से कानून बनाने और सामाजिक नीति को लागू करने की क्षमता में निहित होनी चाहिए।

1989 में राजीव गांधी सरकार की हार और पार्टियों की बढ़ती संख्या वाली गठबंधन सरकारों के उदय के बाद से, सरकारें अध्यक्ष द्वारा प्रतिकूल फैसलों के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई हैं। यह ज्यादातर समय प्रसिंगिक रही परन्तु नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाले भाजपा ने जब 2014 के चुनाव में स्पष्ट बहुमत लेकर आयी तब लोकसभा अध्यक्ष की भूमिका पहले जैसी नहीं रही। यह संसद के समकालीन सन्दर्भ में इसकी जटिलताओं के साथ सफलता तथा चुनौती की ओर अग्रसर करती है।

सन्दर्भ सूची

1. जाफ़रलॉट, सी. 2003. इंडियाज़ साइलेंट रेवोल्यूशन: द राइज़ ऑफ़ द लो कास्ट्स इन नॉर्थ इंडियन पॉलिटिक्स। नई दिल्ली: परमानेंट ब्लैक. जलाल, ए. 1995. दक्षिण एशिया में लोकतंत्र और सत्तावाद: एक तुलनात्मक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. नीरज गोपाल। 2006. भारत का प्रतिनिधित्व: जातीय विविधता और सार्वजनिक संस्थानों का शासन। बेसिंगस्टोक: पालग्रेव मैकमिलन।
3. खिलनानी, एस. (1997) द आइडिया ऑफ इंडिया। लंदन: पेंगुइन।
4. कोठारी, आर. 1994. 'राइज ऑफ द दलित्स एंड द रिन्यूड डिबेट ऑन कास्ट', इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, XXIX(26), पीपी। 1589-94.
5. काइल, सी.आर. और जे. पीस (संस्करण)। 2002. काम पर संसद: प्रारंभिक आधुनिक इंग्लैंड में संसदीय समितियां, राजनीतिक शक्ति और सार्वजनिक पहुंच। वुडब्रिज: बॉयडेल प्रेस।
6. लोकसभा बहस. 2001. लोकसभा वाद-विवाद, तेरहवीं लोकसभा, दसवां सत्र, 12 अगस्त 2002। नई दिल्ली: लोकसभा।
7. मॉरिस-जोन्स, डब्ल्यू.एच. 1957. भारत में संसद लंदन: लोंगमैन्स
8. स्मिथ, डी.ई. 1968. एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत। प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
9. तार्लो, ई. 2003. अनसेटलिंग मेमोरीज़: नैरेटिव्स ऑफ़ इंडियाज़ 'इमरजेंसी'। नई दिल्ली: परमानेंट ब्लैक.
10. ठाकुर, आर. 1995. भारत सरकार और राजनीति। बेसिंगस्टोक: मैकमिलन।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved